



International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2023; 9(2): 170-174

© 2023 IJSR

www.anantaajournal.com

Received: 22-12-2022

Accepted: 25-01-2023

स्मृति बाला

डेजिग्रेशन. पीएच.डी.

(शोधच्छात्रा), संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, भारत

भारतीय साहित्य में नीति तत्त्व एवं उसका विकास

स्मृति बाला

सारांश

नीति का सामान्य अर्थ मानव व्यवहार का उचित और न्यायसंगत होना है। भारतीय साहित्य संसार में नीति के पर्याय रूप में ही धर्म शब्द आया है, जो मानव व्यवहार के लगभग हर पहलू की चर्चा करता है तथा तार्किक न्याय प्रदान करता है। 'मोक्षप्रद' शब्द नीति का आध्यात्मिक अर्थात् उच्चतम आदर्श प्रस्तुत करता है। नीति के विकास की आरंभिक रेखा ऋग्वेद में 'ऋत' के वर्णन से खींची जा सकती है जिसका उत्तरोत्तर विकास धर्म तत्त्व के रूप में हुआ। इसका दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक विवेचन उपनिषद् और कालांतर के दार्शनिक संप्रदायों में प्राप्त होता है।

कूटशब्द : नीति, धर्म, आचार, वेद, उपनिषद्, वैयक्तिक और सामाजिक चिन्तन।

प्रस्तावना

नीति शब्द की व्युत्पत्ति नी धातु से है, जो प्रापण (प्राप्त करना, आगे ले जाना, नेतृत्व करना, स्थिर करना आदि) के अर्थ में प्रयुक्त हुई है। इसका सामान्य अर्थ है मानव व्यवहार का उचित एवं न्यायसंगत होना। भारतीय साहित्य संसार में नीति के पर्याय रूप में ही धर्म शब्द आया है, जो मानव व्यवहार के लगभग हर पहलू की चर्चा करता है तथा तार्किक न्याय प्रदान करता है। दर्शन के क्षेत्र में आचार इसी नीति शब्द का पर्याय है। कामन्दकनीतिसार में नीति शब्द की व्याख्या 'नयनान्नीतिरुच्यतेश्' (नयन करने से नीति कही जाती है) रूप में की गई है। शुक्राचार्य ने नीतिशास्त्र की परिभाषा करते हुए कहा है 'नीतिशास्त्र सबकी जीविका का साधन; लोक की स्थिति बनाये रखनेवाला; धर्म, अर्थ और काम का मूल और इस कारण से मोक्ष देनेवाला है।' 'मोक्षप्रद' शब्द नीति का आध्यात्मिक अर्थात् उच्चतम आदर्श प्रस्तुत करता है।

सर्वोपजीवकं लोकस्थितिकृन्नीतिशास्त्रकम्।

धर्मार्थं कामसूत्रं हि स्मृति मोक्षप्रदं यतरू ॥¹

Corresponding Author:

स्मृति बाला

डेजिग्रेशन. पीएच.डी.

(शोधच्छात्रा), संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, भारत

¹ शुक्रनीतिसार १.५

नैतिक आचार और कर्तव्य के लिए संस्कृत में 'धर्म' शब्द का ही व्यवहार हुआ है। धर्म का प्रयोग स्वगत आत्मगुण और धार्मिक पुण्य के अर्थ में भी हुआ है। एक बृहत् एवं स्थूल रूप में नैतिक कर्तव्यों का वर्गीकरण तीन आधार पर किया जा सकता है- १) व्यक्ति के स्वगत परिष्कार और विकास नैतिक जीवन का उद्देश्य होना, २) उसकी सामाजिकता एवं समाज के साथ उसका सम्बंध, ३) उसका पारमार्थिक कल्याण। धर्मशास्त्र में सर्वप्रथम मनुस्मृति में नैतिक आचरण का वर्गीकरण तीन विभागों में किया गया है- १) सामान्य धर्म, २) वर्णाश्रम धर्म, ३) आपद्-धर्म।² १) सामान्य धर्म वह नैतिक आचरण है, जो मनुष्य मात्र का कर्तव्य है। यह वर्ण, आश्रम, संप्रदाय, लिंग, आयु, देश तथा काल की अपेक्षा से रहित सार्वजनिक, सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक है। मनु ने इसके अंतर्गत दस धर्मों की परिगणना की है-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधः दशकं धर्मलक्षणम्॥³

इसमें मनुष्य की व्यक्तिगत स्वतंत्रता और पूर्णता पर मुख्यतः ध्यान दिया गया है और उसको बाहरी बंधनों (भौतिक और सामाजिक) से मुक्त बनाने की चेष्टा की गई है। स्वतंत्र बुद्धि-विवेक विकास पर बल दिया गया है। २) वर्णाश्रम-धर्म- इसकी व्यवस्था आधुनिक वर्गीकरण रूप ना होकर, मनुष्य की प्रकृति के आधार पर वर्ण और, व्यक्तिगत संस्कार के आधार पर आश्रम-धर्म की व्यवस्था रूप में थी। ये विशिष्ट धर्म हैं जिसका आधार मनुष्य की विशिष्ट योग्यता और पात्रता है। मनुष्य के गुण, कर्म, और स्वभाव के आधार पर समाज में उसका पद तथा स्थान निश्चित होता है और प्रत्येक पद अथवा स्थान के लिए कर्तव्यों का विधान है। इन्हें ही मनुस्मृति में वर्णधर्म कहा गया है।

सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः।
मुखबाहूरुपज्जानां पृथक्कर्माण्यकल्पयत् ॥⁴

३) आपद्-धर्म - इसमें किसी आकस्मिक और असाधारण परिस्थिति के उत्पन्न होने पर मनुष्य के अपने बचाव, अस्तित्व और पुनर्विकास के लिए इस बात की छूट थी कि वह अपने कर्तव्यों को कुछ समय के लिए स्थगित कर दे और दूसरे वैकल्पिक कर्तव्यों से अपना निर्वाह करे।⁵ परन्तु विकल्प भी धर्मशास्त्र विहित ही होना चाहिए। इसमें विकल्प चयन बहुत सावधानी पूर्वक करने का विधान है। सामान्य धर्म के पालन में कोई छूट नहीं दी गई है। यदि धर्म-पालन में क्लेश भी हो तो अधर्म में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए। अधार्मिक पापियों का शीघ्र विनाश होता है।⁶ अन्य सभी ग्रंथों में भी धर्म के इन्हीं तत्त्वों का वर्णन प्राप्त होता है। भारतीय नीतिशास्त्र की दृष्टि से मानव-कर्तव्यों के चार लक्ष्य (पुरुषार्थ) हैं- धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। इनमें धर्म और अर्थ साधन हैं तथा काम और मोक्ष साध्य। इन दोनों में मोक्ष उत्तम और जीवन का चरम लक्ष्य है। यद्यपि काम मूलतः साधन है और धर्म तथा अर्थ साधन हैं; तथापि ये तीनों परस्परावलम्बी हैं। अर्थ और धर्म की अपेक्षा करके काम की उपलब्धि हो ही नहीं सकती। काम का उपादान अर्थ और नियमन धर्म है। अतः काम का सेवन धर्म और अर्थ के द्वारा ही हो सकता है।⁷ अर्थ की आवश्यकता धर्म एवं काम दोनों के लिए ही है। मोक्ष की दृष्टि से धर्म गौण लक्ष्य है, किन्तु उपयोगिता के लिए गौण लक्ष्य प्रधान लक्ष्य बन जाता है अर्थात् उपयोगिता की दृष्टि से अन्य तीनों लक्ष्यों की अपेक्षा धर्म प्रधान लक्ष्य बन जाता जहां धर्म तथा अर्थ अथवा धर्म और काम में विरोध हो, वहां धर्म ही वांछनीय है।⁸ नीति का एक स्रोत आत्मसंतुष्टि अथवा सम्यक् संकल्प से उत्पन्न सहज प्रवृत्ति भी है। मतलब शुद्ध अंतःकरण से उत्पन्न विवेक कार्याकार्य में प्रमाण है।⁹ नीति की इस कल्पना में जीवन के विभिन्न कर्तव्यों का समन्वय पाया जाता है। इसमें मानव के प्रतिबद्ध सामाजिक कर्तव्यों के साथ-साथ उसकी नैतिक स्वायत्तता का भी पूर्ण विकास है, जो भारतीय नीति की विशेषता है।

भारतीय दार्शनिक एवं समाजशास्त्रियों ने धर्म, धर्मतत्त्व, धर्मशास्त्र और नीति को एक-दूसरे से पृथक् नहीं किया है तथा इनका वर्णन, विवेचन प्रायः साथ-साथ हुआ है; जो मनुष्य के सर्वांगीण विकास का परिचायक है। इसमें धर्म ही

⁵ मनुस्मृति, अध्याय १०

⁶ मनुस्मृति ४-१७१

⁷ श्रीमद्भगवद्गीता ७.११

⁸ रामायण, अयोध्या-काण्ड, २१.५७-५८

⁹ मनुस्मृति २-६, याज्ञवल्क्य १-७

² मनुस्मृति, अध्याय १-३

³ मनुस्मृति, ६.६२

⁴ मनुस्मृति- १-८७

मौलिक माना जाता था, इसलिए उसी के उद्गम के अनुसंधान में नीति के स्रोत एवं उद्गम का अनुसंधान हो जाता है। वैदिक संस्कृत में नीति के लिए 'ऋत' शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ है 'नियम' अथवा 'सुव्यवस्था'। यह अनतिक्रमणीय व्यवस्था रूप है जिससे सबकुछ गतिमान् और व्यवस्थित है। ऋग्वेद में कहा गया है कि पहले ऋत आविर्भूत हुआ और तत्पश्चात् सत्य।¹⁰ जब नियम समष्टि में व्यापक रहता है, तब उसकी ऋत संज्ञा होती है। जब वह तप के संयोग से अनेक केंद्रों में विकीर्ण होकर विशिष्ट रूप में अभिव्यक्त होता है, तब वह सत्य कहलाता है। इसलिए मनुष्य के विभिन्न व्यवहारों में ऋत के स्थान पर सत्य को प्रमाण रूप में कहा गया है। ऋग्वेद-संहिता के प्रत्येक सूक्त का एक देवता है, अर्थात् प्रत्येक सूक्त का एक विषय है, जिसका बोध 'देव' पद से होता है। सामान्यतः 'देव' की कल्पना में ही नैतिक तत्त्वों का मूल है। देव शब्द की व्युत्पत्ति 'दिव्' धातु से हुई है जिसका अर्थ प्रकाशित होना या करना है। यास्क ने निरुक्त में व्युत्पत्ति 'देवो दानाद् द्योतनाद् दीपनाद्वा'¹¹ अर्थात् द्योतन, दीपन, दान रूप में किया है। 'देव' पद के शाब्दिक अर्थ में ही ज्ञापकता, दिव्यता, उच्चता, परोपकारिता आदि उच्च नैतिक गुण निहित हैं। प्रत्येक देव की कल्पना में कोई-न-कोई नैतिक तत्त्व निहित है। परन्तु, मुख्य रूप से वरुण नीति का अधिष्ठाता है। वरुण मूलतः नैतिक व्यवस्था के स्वामी हैं। वे ऋण के अवलंब एवं उसके उद्गम हैं।¹² उन्हीं के ऊपर नीति के सनातन नियम आधृत हैं।¹³ वरुण के धर्म (विधि), धामन् (आदेश) और व्रत (नियम) से सम्पूर्ण नैतिक जीवन आच्छादित है।¹⁴ इसके अतिरिक्त मित्र, इन्द्र, अग्नि, सोम, विष्णु, द्यावापृथ्वी, उषस्, वायु, मरुत्, पर्जन्य आदि सभी देव विश्व की जीवन-पद्धति में आधार, सहायक और उसके परिरक्षक हैं।

यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषदों के समय में भारतीय धर्म और फलतः भारतीय नीति में परिवर्तन हुआ। ऋग्वैदिक धर्म का आधार देववाद

¹⁰ ऋग्वेद ७.८६

¹¹ निरुक्त, दैवतकाण्ड, १.५

¹² ऋग्वेद, १.१०५-६

¹³ ऋग्वेद २.२८.५

¹⁴ ऋग्वेद २.२८.८

था, जो सरल और समर्पण-प्रधान था। धार्मिक और सामाजिक समस्याएं सरल होने से नीति भी सरल थी। उत्तरवैदिक काल में धर्म और नीति दोनों में जटिलता आई। इस काल में धर्म वेद प्रधान हो गया जिससे वेद का प्रमाण्य सभी विषयों पर लागू होने लगा। वेदों के विधान ही नीति, धर्म और कर्म में प्रमाण और उसके आधार बन गए। कर्मकाण्ड मनुष्य की आस्थाओं और भावनाओं पर आधारित था जिसका उद्देश्य लोकमंगल ही था। इसलिए कर्मकाण्ड के भीतर से ही नीति का विकास होने लगा। मनुष्य के कर्तव्यों का प्रथम सिद्धान्तीकरण ब्राह्मण ग्रंथों में पाया जाता है जहां मनुष्य के तीन ऋणों - ऋषि-ऋण, देव-ऋण, पितृ-ऋण का वर्णन प्राप्त होता है। इसके साथ-साथ नित्य पंचमहायज्ञों - ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, नृयज्ञ, भूतयज्ञ के अनुष्ठान का भी विकास हुआ। यज्ञों का प्रथम उद्देश्य मनुष्य में देवत्व की भावना उत्पन्न करना, अर्थात् अपने में देवोचित गुणों का विकास करना था। यह पुण्य और सत्कर्म का अनुष्ठान था - *अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः*।¹⁵ जीवन चार आश्रमों में विभाजित था। वर्ण व्यवस्था में जटिलता आ गई थी। जो पहले कर्मणा थी वह जन्मना हो रही थी। विभाजन आधारवत् के स्थान पर लम्बवत् हो गई थी।

उत्तरवैदिक काल में नीति वेद से ही प्रभावित थी, अभी तक इसका दार्शनिक पक्ष सामने नहीं आया था। इसका प्रारंभ भारतीय दार्शनिक साहित्य उपनिषद्-दर्शन में होता है। भारत में यह मान्यता है कि दार्शनिक का जीवन नैतिक होना ही चाहिए। यहां नैतिक जीवन स्वयं सिद्ध है, विवेच्य नहीं। उपनिषदों में जीवन अंतर्मुख हुआ। जीवन का जो आधार या स्रोत बाहर ढूंढा जा रहा था वह भीतर ही सर्वात्मवाद अथवा ब्रह्मवाद के रूप में मिल गया। यह ब्रह्मवाद, अद्वैतवाद पारमार्थिक है जो व्यवहार में अच्छे-बुरे का निषेध नहीं करता; वह ब्रह्म को दृष्टि में रखकर समग्र सामाजिक संबंधों और व्यवहारों को उचित और न्याय्य बनाने की प्रेरणा देता है। इसमें आत्मा, ज्ञान-अज्ञान, बुद्धि, मन, इंद्रियों तथा विषयों का वर्णन और विवेचन दार्शनिक धरातल पर किया गया है। जीवन में ज्ञान और नीति दोनों आवश्यक है। ज्ञान और नीति में अंतर इतना ही है कि ज्ञान मोक्ष का मुख्य तथा प्रत्यक्ष साधन है; नीति गौण और अप्रत्यक्ष। वास्तव में अज्ञान के कारण ही अनैतिक व्यवहार होता है। उपनिषदों के ज्ञान में नैतिक आचरण अंतर्निहित है। आध्यात्मिक साधना में प्रविष्ट होने के लिए चित्त की शुद्धि और नैतिक आचरण अनिवार्य है और साधना के समय

¹⁵ अथर्ववेद; ऐतरेय ब्राह्मण. १.४.३

सहायक भी है। 'यह आत्मा बलहीन से प्राप्य नहीं और न प्रमाद, तप अथवा बाह्य चिन्ह धारण से। जो विद्वान् इन उपायों (नैतिक और बौद्धिक) से प्रयत्न करता है उसी का आत्मा ब्रह्मधाम में प्रवेश करता है।'

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तयो वाप्यलिङ्गात् ।

एतैरूपायैर्यतते मस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशेष ब्रह्म धाम ॥¹⁶

उपनिषदों के अनुसार जीवन का अंतिम लक्ष्य आध्यात्म है, नीति नहीं। नीति आध्यात्म का साधन है। कर्तव्य-पालन जीवन की आध्यात्मिक पूर्णता की एक सीढ़ी है। पवित्र, प्रबुद्ध और पूर्ण पुरुष ही लोक-नीति और लोक-कल्याण का निर्माता हो सकता है। पवित्रता, ज्ञान और पूर्णता के अभाव में लोक कल्याण की यांत्रिक योजना निष्प्राण और मूल्यरहित है। नीति और आचार तत्त्वों का विस्तृत वर्णन भारतीय दार्शनिक संप्रदायों में प्राप्त होता है जहां न केवल दर्शन को शास्त्रीय रूप देने का प्रयास हुआ, अपितु नीति को भी। जैन धारा में नैतिक आचरण मोक्ष के साधनों में से एक है। इसमें प्राप्त त्रिरत्न-सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र; नीति के ही पोषक हैं। पंच महाव्रत-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, के अंतर्गत मूल नैतिक गुणों की गणना की गई है। नीति का उपयोग यह है कि यह मोक्ष-मार्गी आत्मा की सभी निम्नगामिनी प्रवृत्तियों को रोककर उसको उन्नयन और उत्थान के मार्ग में अग्रसर करती है। बौद्ध दर्शन में भी चार आर्य सत्यों के उद्घाटन के पश्चात्, दुःख निवृत्ति के लिए अष्टांगिक मार्ग रूप में नीति एवं आचार तत्त्व की महत्ता आ जाती है। भारतीय छः आस्तिक दर्शनों में नीति का मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक विवेचन पाया जाता है। नैतिक जीवन दार्शनिक उपलब्धि का आवश्यक साधन माना जाता था इस कारण इसका विवेचन अंग रूप में किन्तु शास्त्रीय दृष्टि से हुआ है।

उत्तरोत्तर काल में रामायण और महाभारत में नीति विषयक अनेक तत्त्व प्राप्त होते हैं जो इसके पात्रों द्वारा पुष्ट भी होते हैं। भारतीय वांगमय में रामायण और महाभारत यद्यपि काव्य और इतिहास माने जाते हैं, तथापि कालक्रम में इन्होंने धर्म-संहिता और नीति के विशाल भण्डार का रूप

धारण कर लिया। परवर्ती धर्मशास्त्रकारों ने व्यवहार और नीति की समस्याओं पर इनमें प्राप्त अवतरण को उद्धृत किया है। महाभारत के विषय में तो कथित ही है 'यत्र भारते, तत्र भारते'। महाभारत युद्ध द्वापर के अंत में हुआ था, जिस काल में भारतीय नीति एक विशिष्ट स्थिति में पहुंच गई थी क्योंकि यह द्वैत, द्वंद और संघर्ष का काल था। महाभारत के प्रत्येक पर्व में नैतिक समस्याएं उठाई गई हैं तथा उसका समाधान दिया गया है। विशेष रूप से वनपर्व, सभापर्व, भीष्मपर्व, शान्तिपर्व और अनुशासनपर्व में नीति की विशद व्याख्या की गई है। महाभारत के शान्तिपर्व और वनपर्व नीति की दृष्टि से विशेष महत्त्व के हैं। भीष्मपर्व के प्रारंभ में युद्ध के पूर्व अर्जुन का मोह, कार्याकार्य के संबंध में उसकी शंका, अज्ञानमूलक प्रज्ञावाद और भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा उनका समाधान नैतिक विवेचन का केंद्रस्थल है। यही गीता का प्रतिपाद्य विषय है। इसमें वर्णित कर्मयोग आचार-शास्त्र की एक सुदृढ़ आधारशिला है।

नीति के पर्याय रूप में धर्म के स्रोतों का सबसे पहले विवेचन धर्मसूत्रों में हुआ है। गौतम धर्मसूत्र के अनुसार, 'वेद धर्म का मूल है। उसको जनानेवाले ऋषियों की स्मृति और शील भी धर्म का मूल है। वेदो धर्ममूलम् । तद्विदां च स्मृतिशीले ।¹⁷ धर्मसूत्रों में परिगणित धर्म के स्रोतों का और अधिक स्पष्टीकरण स्मृतियों में हुआ है। याज्ञवल्क्य और मनुस्मृति में भी पूर्ववत् ही वेदों को धर्म का मूल कहा गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति में सम्यक् संकल्प से उत्पन्न काम को भी धर्म के मूल के रूप में कहा गया है।¹⁸ याज्ञवल्क्य ने धर्म के चौदह स्थानों का भी उल्लेख किया है: पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, छः वेदांग और चार वेद, ये चौदह धर्म के स्थान हैं।¹⁹ स्मृति ग्रन्थ एवं उनपर लिखित भाष्यों और टीकाओं के साथ-साथ धर्मशास्त्र के संग्रह-ग्रंथ भी नीति और धर्म के ऊपर प्रमाण माने जाते हैं।

समाज और नीति का आधार-आधेय संबंध है। सामाजिक परिस्थितियां नीति को प्रभावित करती हैं और नैतिक सिद्धांत सामाजिक जीवन को प्रभावित करते हैं। भारतीय इतिहास में दोनों प्रवृत्तियां सहचरी रहीं हैं। सामाजिक संस्थाओं के उदय, विकास और ह्रास में सामाजिक नीति का क्रमिक इतिहास खोजा जा सकता है। भारतीय साहित्य के इतिहास के विभिन्न चरणों में नीति और आचार के बदलते रूप और सामाजिक परिवेश में मानव के आचरण के स्वरूप

¹⁷ गौतम धर्मसूत्र- १.१-२

¹⁸ याज्ञवल्क्य स्मृति १.७

¹⁹ याज्ञवल्क्य स्मृति १.७.३

प्राप्त होते हैं। भारतीय समाज में कालांतर में अनेक सामाजिक बुराइयों ने जन्म लिया जिसका परिष्कार अनेक सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलनों के द्वारा होता रहा। आज इस भूमंडलीकृत युग में और भौतिकवादी दौर में नित नवीन आविष्कारों से मनुष्य में भोग प्रवृत्तियां अधिकाधिक बढ़ती जा रहा हैं। इसके अतिरिक्त अत्यधिक प्रतिस्पर्धा मानसिक तनाव और शारीरिक दुर्बलता को बढ़ा रहे हैं। अभी मनुष्य के लिए अत्यन्त आवश्यकता है कि वह अपने अस्तित्व, जरूरत और जीवन के अनेक पहलुओं पर तार्किक तथा गम्भीर विचार करे जिससे वह एक पूर्ण एवं खुशहाल जीवन जी सके तथा यही हमारे समृद्ध चिन्तन-परम्परा का सन्देश भी है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारतीय नीति कर्तव्यों के विधान में व्यक्ति के बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास और उसके सामाजिक पर्यावरण का ध्यान रखती है। नीति के संतुलित दृष्टिकोण से जीवन के चार पुरुषार्थों-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में धर्म, अर्थ को साधन और काम, मोक्ष को साध्य रूप माना गया है। इसमें भी परम साध्य मोक्ष है। व्यावहारिक धरातल पर धर्म, अर्थ तथा काम के समुच्चय का संतुलित दृष्टिकोण ही भारतीय नीति में वांछनीय है। व्यावहारिक कर्तव्य और आचार ही नीतिशास्त्र के अध्ययन के लिए आधारभूत हैं। भारतीय जीवन और विचार की समुच्चयात्मक प्रवृत्ति के कारण भारतीय साहित्य में नीति, धर्म और दर्शन के साथ घुली-मिली हुई है। नीतिशास्त्रीय सिद्धांत और उपदेशात्मक तत्त्व जो आरंभिक साहित्य में प्राप्त होते हैं, कालांतर के दार्शनिक साहित्य में इनका ही शास्त्रीय विवेचन किया गया है।

सन्दर्भ ग्रंथ-सूची

1. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', संस्कृत साहित्य का इतिहास
2. राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, भाग-2
3. राधाकृष्णन, उपनिषदों की भूमिका
4. आत्रेय, डॉ भीखनलाल, भारतीय नीति-शास्त्र का इतिहास
5. R. D. Ranade, Constructive Survey of Upanishadic Philosophy
6. ईशावास्योपनिषद्
7. श्रीमद्भगवद्गीता
8. पाण्डेय, डॉ श्रीराजबली, भारतीय नीति का विकास